❀ श्रीः ❀

आचार्य-ग्रन्थमाला—२१

आचार्य श्री वेदान्तदेशिक विरचित

श्री स्तुतिः

अन्वयार्थ, भावार्थ, अध्ययन समेत

अनुवादक—

रा घ वा चा र्य

संवत् २०१० } श्री आचार्यपीठ, बरेली { मूल्य ।=)

॥ श्रीः ॥

आचार्य ग्रन्थ-माला—२१

आचार्य श्री वेदान्तदेशिक विरचित

श्री स्तुतिः

अन्वयार्थ, भावार्थ, अध्ययन समेत

अनुवादक—

राघवाचार्य

मूल्य } श्री आचार्यपीठ, बरेली {छः आना

प्रकाशक—

श्री आचार्य पीठ,

बरेली।

श्री रामानुज जयन्ती ९३७

७-१-२०१०

(१९ अप्रेल १९५३)

मुद्रक—

आचार्य प्रेस,

बरेली।

स्मृति

जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के महान् उपासक थे, जो
सनातन धर्म के मूर्तिमान कोष थे, जो श्री वैष्णव सम्प्रदाय
की विमल विभूति थे, जिनकी उदार सहायता से देश
की अनेकों धार्मिक एवं लोकोपकारी संस्थाओं का
संरक्षण होता था तथा जिनका भागवत
यशः शरीर आज भी धार्मिक जगत
को धर्म पथ पर अग्रसर
होने के लिये प्रेरित
कर रहा है,

उन

श्री वैष्णव धर्मप्राण, भगवद्भागवताचार्य कैंकर्य पारायण,
सदाचार-मूर्ति, आदर्श दानवीर,

वैकुण्ठवासी सेठ श्री मंगनीराम जी बांगड़

की

पुनीत स्मृति में

प्रकाशित

* श्रीः *

निवेदन

आचार्य ग्रन्थमाला के अब तक जितने पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं उन में स्तोत्र विभाग के अन्तर्गत ये चार स्तोत्र आते हैं— (१) न्यासदशक, (२) चतुःश्लोकी, (३) श्रीवेदान्तदेशिकमङ्गल और (४) मुकुन्दमाला। यह इस ग्रन्थमाला का २१ वाँ पुष्प है इस में आचार्यसार्वभौम श्री वेदान्तदेशिक विरचित श्रीस्तुति नामक स्तोत्र अन्वयार्थ भावार्थ एवं अध्ययन समेत समेत दिया गया है। जगन्माता लक्ष्मी के विषय में यह अत्यन्त फलदायक सिद्ध स्तोत्र है। इस स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक अनुसन्धान (पाठ) करते हुये साधक अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सभी पुरुषार्थों को प्राप्त कर सकते हैं। आशा है कि प्रेमी पाठक इस प्रकाशन से लाभ उठायेंगे।

—सम्पादक

विषय सूची

श्लोकानुक्रम सूची

❀ श्रीः ❀

श्रीस्तुति-अध्ययन

रचयिता

श्रीस्तुति आचार्य श्रीवेदान्तदेशिक की रचना है। २५ श्लोकों के इस स्तोत्र में आचार्य ने जगन्माता लक्ष्मी का स्तवन किया है। आचार्य की जीवनी* का अनुशीलन करने वाले अच्छी तरह जानते हैं कि भिक्षावृत्ति से अपना जीवन व्यतीत करने वाले आचार्य को जगन्माता लक्ष्मी ने ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बनाया था। यह लक्ष्मी का प्रसाद था कि जिसके कारण आचार्य को सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओं का पूरा २ ज्ञान प्राप्त हुआ था। लक्ष्मी की ही दया से समय २ पर आचार्य अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा प्रदर्शित करने में समर्थ हुये थे। ऐसी स्थिति में यह कहना अनुचित न होगा कि यह स्तुति आचार्य की उस श्रद्धामयी भक्तिमयी भावना का शब्दचित्र है जो निरन्तर उनकी उपासना, चिन्तना एवं साधना का अंग रही थी।

श्री का स्तवन

जैसाकि नाम से स्पष्ट है कि श्रीस्तुति लक्ष्मी की स्तुति है। अर्चामूर्ति की दृष्टि से कहा जाता है कि आचार्य ने रङ्गधाम में इस स्तुति की रचना की। कहना न होगा कि रङ्गधाम सदा

---

*—आचार्य ग्रन्थमाला का तीसरा पुष्प-श्रीवेदान्तदेशिक

से श्रीवैष्णव आचार्यों का प्रमुख उपासना केन्द्र रहा है और इस रूप में श्रीरङ्ग लक्ष्मी का समय २ पर स्तवन भी किया गया है। जगद्गुरु श्रीरामानुज मुनीन्द्र के शिष्य आचार्य श्रीवत्साङ्क मिश्र का श्रीस्तव और उनके पुत्र आचार्य श्री पराशरभट्ट का श्रीगुणरत्नकोश इसके साक्षी हैं। इन स्तोत्रों की छाया की दृष्टि से यदि श्रीस्तुति को श्रीरङ्ग लक्ष्मी विषयक मान लिया जाय तो कोई हानि भी नहीं है।

एक विचार यह भी है कि इस श्रीस्तुति का सम्बन्ध तिरुअहीन्द्रपुर की सेङ्कमलत्तायार (हेमाब्जनायिका) लक्ष्मी से है। इस विचार के समर्थन में कहा यह जाता है कि इस स्तुति के अन्तिम श्लोक में 'सरसिजनिलयायाः स्तोत्रम्' कहकर लक्ष्मी जी को जिस नाम से सम्बोधित किया गया है उसी नाम से श्री देवनायक पञ्चाशत स्तोत्र में* लक्ष्मी का सम्बोधन है। इसके अतिरिक्त जब तिरुअहीन्द्रपुर के सभी अर्चामूर्तियों की स्तुति आचार्य देशिक द्वारा हुई तो यह स्वाभाविक था कि वहाँ की लक्ष्मी की भी स्तुति होती। और वह यही स्तुति है। ऐसा मानने में भी कोई आपत्ति नहीं दीख पड़ती।

वास्तव में यदि स्तुति के श्लोकों को गम्भीरता से देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि श्रीस्तुति ऐसी स्तुति है जो लक्ष्मी की सभी अर्चामूर्तियों के प्रति लागू होती है। अस्तु।

---

*—मातस्त्वमम्बुरुहवासिनि (४) सहसरसिजवासा (४२)

श्री तत्व

कहना न होगा कि 'श्री' श्रीवैष्णव दर्शन का एक प्रमुख विषय है। परमतत्व की चर्चा श्रीतत्व के विवेचन के बिना पूरी नहीं होती। इसीलिये विष्णु तत्व के साथ २ श्रीतत्व की चर्चा की जाती है। दर्शन के क्षेत्र में मतभेद के स्वाभाविक होने पर भी न तो 'श्री' का तत्व के रूप में प्रतिपादन किये जाने में किसी को आपत्ति है और न उस धार्मिक साहित्य में किसी को सन्देह है जिसमें 'श्री' का वर्णन किया गया है।

श्री विषयक साहित्य

अनन्त अपौरुषेय वेद की श्रुतियों में 'श्री' का वर्णन मिलता है। श्री सूक्त का देवता साक्षात् श्री है। स्मृतियों में, इतिहास पुराणों में तथा श्रीवैष्णव आगम की संहिताओं में स्थान २ पर 'श्री' का वर्णन है। पूर्वाचार्यों ने इन सारे वर्णनों के प्रकाश में श्रीतत्व का साक्षात्कार किया और अपने स्तोत्रों में एवं अन्य रचनाओं में अपनी श्री विषयक अनुभूति को व्यक्त किया है।

पूर्वाचार्यों की रचनायें और श्री स्तुति

पूर्वाचार्यों की श्री विषयक रचनाओं में आचार्य श्री यामुन मुनि की चतुश्श्लोकी, आचार्य श्री रामानुज मुनीन्द्र का शरणागति गद्य का प्रथम गद्य, उनके शिष्य आचार्य श्रीवत्साङ्क मिश्र का श्री स्तव और आचार्य मिश्र के पुत्र आचार्य श्री पराशर भट्ट के श्री गुण रत्नकोश की एक शृंखला मिलती है। श्रीरङ्गनाथ

मुनि का (नम्जीयर) का श्री सूक्त भाष्य इस शृंखला की अगली कड़ी है। इस भाष्य में सारे श्री विषयक साहित्य का पूरा २ विवेचन है। विवेचन की यही धारा आचार्य श्रीवेदान्तदेशिक तक पहुंचकर श्री स्तुति के रूप में प्रकट हुई है।

मङ्गलाचरण

श्री स्तुति का पहिला श्लोक मङ्गलाचरण है। 'मङ्गलं मङ्गलानाम्' कहकर इस श्लोक में लक्ष्मी को मङ्गल का मङ्गल करने वाली बताया गया है। मङ्गलाचरण वन्दना के रूप में है। और वह भी साधारण नमस्कार नहीं। श्री सूक्त के पांचवें मन्त्र में पठित श्री प्रपत्ति का आचार्य ने इस श्लोक में वाणी द्वारा अनुष्ठान किया है। मन्त्र में कहा गया है कि 'मैं उन लक्ष्मी की शरण ग्रहण करता हूँ जो संसार में देवताओं के द्वारा सुसेवित हैं तथा उदार हैं*।

स्तुति कर्ता की योग्यता

मङ्गलाचरण तो हो गया। अब स्तुति होनी चाहिये। किन्तु स्तुति हो कैसे ? दूसरे ही श्लोक में आचार्य तो स्तुति करने में शक्ति का अभाव अनुभव करने लगे। आपका कहना है कि कहाँ महामहिमाशालिनी लक्ष्मी और कहाँ मेरी सीमित बुद्धि (२)। तथापि लक्ष्मी की दया का ध्यान करते हुये आप आगे बढ़ते

---

*— ....श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनेमिं शरणमहं प्रपद्ये.............................॥ ५ ॥

हैं। आचार्य बताते हैं कि लक्ष्मी तो स्तुति करने वाले को ऐसा बना देती हैं कि दूसरे लोग उनकी स्तुति किया करें। इतना ही नहीं। जहाँ लक्ष्मी की सेवा करने की इच्छा हुई कि इच्छुक का कल्याण हुआ। फिर स्तुति करने की इच्छा क्यों कर पूरी नहीं हो सकती (३)।

जगत्कारण और लक्ष्मी

लक्ष्मी की दया का प्रसाद लेकर आचार्य स्तुति करने जा रहे हैं। लक्ष्मी की स्तुति करने की इच्छा है। मन में विचार आया कि इस जगत के साथ रहने वाले लक्ष्मी के सम्बन्ध को बताया जाय। ब्रह्मवादी सभी दार्शनिक मानते हैं कि परब्रह्म जगत का कारण हैं। संसार की रचना पालन और प्रलय उनके सङ्कल्प के आधीन है। आचार्य ने दिव्य दृष्टि द्वारा तेजोमय ब्रह्म का साक्षात्कार किया। उस तेज में आपने लक्ष्मी की छटा भी देखी। अतः उन्होंने कहा कि ब्रह्म का दिव्य तेज लक्ष्मी के महावर से युक्त है (४)।

परब्रह्म के तेज में लक्ष्मी का महावर। बात विचित्र है। किन्तु है सत्य। लक्ष्मी भगवान् के वक्षःस्थल में विराजमान हैं। उनके सारे रूप की झांकी वहाँ मिलती है। जब सारा रूप है तो चरण भी हैं और जब चरण है तो चरणों की महावर भी।

दिव्य दम्पती

लक्ष्मी और नारायण का सम्बन्ध दिव्य दाम्पत्य का है। इस

दाम्पत्य में सनातन एकात्मता है। आचार्य ने इस दाम्पत्य की परीक्षा शेष की शय्या पर की, वेद की श्रुतियों में की तथा साधुजनों के मनमें की (५)। इतना ही नहीं। आचार्य का अपना मन भी तो इस सत्य के लिये साक्षी था। आत्म समर्पण यज्ञ की चर्चा इसका प्रमाण है (६)।

शय्या पर दाम्पत्य की परीक्षा। बात अटपटी सी है अपरिचित के लिये। किन्तु आप तो दिव्य दम्पती को माता–पिता मान रहे थे। इसके अतिरिक्त श्रुतियाँ और नित्य सूरि भी दर्शक हैं। और इनके सामने लक्ष्मी नारायण का सनातन द्यूतक्रीड़ा (पासों का खेल) चल रही है जिसमें निरन्तर दया और न्याय की होड़ लगी रहती है (७)।

इसके आगे आचार्य ने लक्ष्मी के नामों में मोक्ष प्रदान करने की सामर्थ्य भी बताई है (८)। इस तरह जगत्कारण तत्वसे लेकर मोक्ष प्रदान तक की सामर्थ्य लक्ष्मी में देखकर कोई भी विचार शील अकेले नारायण को अपना उपास्य नहीं मान सकता। आचार्य भी 'दम्पती दैवतं नः अर्थात् लक्ष्मी नारायण दोनों मिलकर मेरे देवता की घोषणा करते हैं (९)।

लक्ष्मी का रूप

दिव्य दम्पती की एकात्मता का दिग्दर्शन कराने के पश्चात उन दोनों के और विशेषकर लक्ष्मी के रूप की चर्चा आवश्यक थी। स्तुति के दसवें तथा ग्यारहवें श्लोकों का विषय यही है।

धर्म शास्त्रों के अनुसार गृहस्थ जीवन का एक उद्देश्य यज्ञ

होता है। नारायण और लक्ष्मी के दाम्पत्य में भी यज्ञ दिखाई पड़ता है। यह शरणागत संरक्षण रूप यज्ञ है। आचार्य कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने शरणागत संरक्षण की दीक्षा लिये हुये हैं (१०)। यज्ञ में यजमान के साथ उसकी पत्नी भी दीक्षा लेती है। लक्ष्मी ने दीक्षा ले रक्खी है। यज्ञ के नियमानुसार दीक्षित पति को पत्नी के साथ रहकर यज्ञ कार्य का सम्पादन करना पड़ता है। शरणागत-संरक्षण यज्ञ में भगवान् भी इस नियम का निर्वाह करते हैं। अतः अवतार लेने पर भी उनका और लक्ष्मी का साथ बना रहता है। और इस प्रकार साथ रहने में लक्ष्मी का रूप भगवान् के अनुरूप ही रहा करता है (१०)।

११ वें श्लोक में आचार्य ने भगवान् और लक्ष्मी के साहचर्य की उपमा क्षीर समुद्र की तरङ्गों और उसकी मधुरता से दी है। इस उपमा में प्रकृति की गन्ध आती है। अतः किसी को लक्ष्मी के रूप के प्रकृति जनित होने का सन्देह हो जाय इसलिये आपने अगले श्लोक में लक्ष्मी की प्रथम मूर्ति का वर्णन कर दिया। इस रूप की उपमा आनन्द समुद्र से देकर आपने यह स्पष्ट कर दिया कि लक्ष्मी का रूप भौतिक न होकर अप्राकृतिक दिव्य है (११)।

लक्ष्मी की विभूति

विष्णु पुराण में बताया गया है कि देवताओं में पशु-पक्षिओं में तथा मनुष्यों में जो पुरुष रूप वैभव दिखाई देता है वह भगवान् विष्णु का है और जो स्त्री रूप वैभव दिखाई देता है

वह लक्ष्मी का है । इसी के अनुसार लक्ष्मी की विभूति का वर्णन करते हुये आचार्य ने सरस्वती, पार्वती और इन्द्राणी को उनकी विभूति बताया है (१२) ।

लक्ष्मी का अभिषेक

उपर्युक्त श्लोकों में जगज्जननी के स्वरूप, रूप, गुण और वैभव की चर्चा हो चुकी । १३ वें में लक्ष्मी के अभिषेक का वर्णन है । महर्षि पराशर ने बताया है कि दिग्गजों (दिशाओं के गजेन्द्रों) ने स्वर्ण कलशों में पवित्र जल लेकर सर्वलोकेश्वरी लक्ष्मी को स्नान कराया ।

लक्ष्मी की आराधना

श्री तत्व का परिचय मिल चुका । अब साधना की दृष्टि से विचार अपेक्षित है । भक्ति मार्ग के साधक चार प्रकार के होते हैं आर्त, अर्थार्थी जिज्ञासु और ज्ञानी । आचार्य के अनुसार इन चारों ही प्रकार के भक्तों के लिये लक्ष्मी की आराधना करनी चाहिये ।

आचार्य ने आर्त देवताओं की शरणागति की चर्चा करते हुये बताया है कि उन्होंने लक्ष्मी की कृपा से अपने नष्ट हुये वैभव को पुनः प्राप्त किया (१४) । देवता लोग भला उस वैभव को क्यों न प्राप्त करते । आचार्य के अनुसार लक्ष्मी की दृष्टि ऐसी है कि जिसके पड़ते ही सम्पत्तिओं की होड़ लग जाती है (१५) । जिज्ञासु साधक आत्म दर्शन चाहते हैं । यदि वे लक्ष्मी

के अनन्य भक्त बन कर आत्म दर्शन के पथ पर अग्रसर होते हैं तो भी उनको धन की कमी नहीं रहती। उनके लिये तो लक्ष्मी सभी ओर से धन की वर्षा करती हैं (१६)। श्रेय की कामना से जो अर्थार्थी लक्ष्मी की शरण लेते हैं वे भी निहाल हो जाते हैं (१७)। और ज्ञानी अर्थात् अनन्य भक्त के रूप में पाप और अविद्या से मुक्ति पाने के लिये तो लक्ष्मी की दया का सहारा लेते हैं वे मोक्ष पा लेते हैं (१८)। इन अनन्य भक्तों में उत्तम वे हैं जो मुक्ति भी नहीं चाहते, जो दिव्य दम्पती लक्ष्मी नारायण की प्रसन्नता के लिये उनकी सेवा करते हैं (१६)।

आचार्य की कामना

अगले पांच श्लोकों में आचार्य ने जगन्माता की सन्निधि में अपने सम्बन्ध में प्रार्थना की है। आपको न अर्थ की कामना है, न काम को न धर्म की और न मोक्ष की। आपने तो लक्ष्मी के चरणों की सेवा करने का व्रत ले लिया है (२०)। एक अकिञ्चन की तरह। त्रिविध तापों से आप शान्ति चाहते हैं (२१)। किन्तु मांगने का अवसर ही नहीं आता। कारण आचार्य कहते हैं कि लक्ष्मी बिना मांगे ही मंगल करती रहती हैं (२२)।

आचार्य के हृदय में कामना रही ही नहीं। आचार्य ने अनुभव किया कि वह लक्ष्मी–नारायण दोनों की दया पात्र बन गये हैं। ऐसा इसलिये भी होना था कि आचार्य परम्परा ने उनको दिव्य दम्पती की सेवा में समर्पित कर दिया था। आचार्य

ने अपनी स्थिति पर विचार किया और माता लक्ष्मी की ओर देखा। माता के मुस्कराते हुये मुख से जैसे ही उन्होंने सुना कि मैं तेरा और क्या उपकार करूँ वे आनन्द समुद्र में डूब गये (२३)। उन्होंने लक्ष्मी से हृदय स्थल में विराजमान रहने की प्रार्थना की (२४)।

फल श्रुति

स्तुति पूरी हो गई। माता से कुछ कहना भी शेष नहीं रह गया। आचार्य ने फल श्रुति का अन्तिम श्लोक लिखा कि इस स्तोत्र के पाठ करने वाले सब प्रकार से सुखी होते हैं।

कहना न होगा इस फल श्रुति की सत्यता का प्रमाण आचार्य के जीवन में ही मिल गया था। एकबार एक ब्रह्मचारी के आपके पास धन मांगने के लिये पहुंचने पर आपने इसी स्तोत्र का पाठ करते हुये इसके १६ वें श्लोक चिन्तन किया था। तब माता लक्ष्मी की कृपा से धन की वर्षा हुई थी। तब से अब तक न जाने कितने इस स्तुति के सहारे माता लक्ष्मी के कृपा पात्र बन चुके हैं और आगे भी बनते रहेंगे।

लक्ष्मी नामावली

अन्त में इस स्तुति में आये हुए नामों को गिना देना उचित होगा। ये इस प्रकार हैं—(१) श्री, (२) लक्ष्मी, (३) देवी, (४) भगवती, (५) इन्दिरा, (६) जलधितनया, (७) अमृतसहजा, (८) कमला, (९) पद्मा, (१०) विष्णु पत्नी, (विष्णु कान्ता) (११) विश्वाधीश प्रणयिनी, और (१२) सरसिज निलया, (कमल निलया)।

※ श्रीः ※

॥ श्रीस्तुतिः ॥

श्रीमान् वेङ्कटनाथार्यः कवितार्किक केसरी ।
वेदान्ताचार्यवर्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि ॥

(१)

मानातीतप्रथितविभवां मङ्गलं मङ्गलानां
वक्षःपीठीं मधुविजयिनो भूषयन्तीं स्वकान्त्या ।
प्रत्यक्षानुश्रविकमहिमप्रार्थिनीनां प्रजानां
श्रेयोमूर्तिं श्रियमशरणस्त्वां शरण्यां प्रपद्ये ॥

अन्वयार्थ

मानातीत प्रथित विभवाम्	— तुम्हारा वैभव अतुलनीय है अर्थात् नापा नहीं जा सकता है और अत्यन्त प्रसिद्ध है,
मङ्गलानाम् मङ्गलम्	— तुम समस्त मङ्गलों का भी मङ्गल करने वाली हो,
स्व कान्त्या	— अपनी कान्ति से
मधु विजयिनः वक्षःपीठीम्	— मधुदैत्य पर विजय प्राप्त करने वाले भगवान् के वक्षस्थल को

भूषयन्तीम्	— अलंकृत करती हो,
प्रत्यक्षानुश्रविक महिम-प्रार्थिनीनाम्	— प्रत्यक्ष और शास्त्रसिद्ध महिमा की प्रार्थना करने वाले
प्रजानाम्	— प्रजा-जनों की
श्रेयोमूर्तिम्	— कल्याणमय मूर्ति हो,
शरण्याम्	— तुम शरण्य हो,
श्रियम्	— लक्ष्मी हो,
अशरणः	— अशरण मैं
त्वाम्	— तुम्हारी
प्रपद्ये	— शरणग्रहण करता हूँ।

भावार्थ

हे लक्ष्मी! तुम्हारा वैभव अतुलनीय और अत्यन्त प्रसिद्ध है। तुम समस्त मङ्गलों को भी मङ्गल करने वाली हो। मधु दैत्य पर विजय प्राप्त करने वाले भगवान् के वक्षस्थल को तुम अपनी कान्ति से अलंकृत करती हो। प्रत्यक्ष और शास्त्रसिद्ध महिमा की प्रार्थना करने वाले प्रजा जनों के लिये तुम कल्याणमयी मूर्ति हो। तुम शरण्य हो। तुम श्री हो। अशरण मैं तुम्हारी शरण ग्रहण करता हूँ।

---

(२)

आविर्भावः कलशजलधावध्वरे वापि यस्याः
स्थानं यस्याः सरसिजवनं विष्णुवक्षःस्थलं वा ।

भूमा यस्या भुवनमखिलं देवि दिव्यं पदं वा
स्तोकप्रज्ञैरनवधिगुणा स्तूयसे सा कथं त्वम् ॥

यस्याः आविर्भावः	— जिनका अवतार
कलश जलधौ	— क्षीर समुद्र से
अध्वरे अपि वा	— तथा यज्ञ से भी हुआ,
यस्यः स्थानम्	— जिनका निवास स्थान
सरसिजवनम्	— कमल वन
विष्णुवक्षः स्थलं वा	— और विष्णु भगवान् का हृदय है,
यस्याः भूमा	— जिनका वैभव
अखिलम् भुवनम्	— यह सारा संसार
दिव्य पदम् वा	— और परम पद है
देवि !	— ऐसी हे देवि
अनवधिगुणा सा त्वम्	— तुम अनन्त गुण वाली हो,
स्तोकप्रज्ञैः	— सीमित ज्ञान वालों के द्वारा
कथं स्तूयसे	— तुम्हारी स्तुति कैसे की जा सकेगी।

हे देवि ! तुम क्षीर समुद्र से प्रकट हुई थीं। महाराज जनक के यज्ञ से भी तुम्हारा अवतार हुआ था। कमल वन और विष्णु भगवान् का हृदय तुम्हारा निवास स्थान है। यह सारा संसार तथा नित्य परम पद तुम्हारा वैभव है। तुम अनन्त गुणों वाली

हो । मुझ सरीखे सीमित ज्ञान वाले तुम्हारी कैसे स्तुति कर सकते हैं ?

(३)

स्तोतव्यत्वं दिशति भवती देहिभिः स्तूयमाना
तामेव त्वामनितरगतिः स्तोतुमाशंसमानः ।
सिद्धारम्भः सकलभुवनश्लाघनीयो भवेयं
सेवापेक्षा तव चरणयोः श्रेयसे कस्य न स्यात् ॥

देहिभिः स्तूयमाना	— जो व्यक्ति आपकी स्तुति करते हैं,
भवती	— आप
स्तोतव्यत्वम् दिशति	— उन्हें तुरन्त प्रशंसा का पात्र बना देती हैं,
अनितरगतिः	— अनन्य गति वाला मैं
ताम् एव त्वाम् स्तोतुम् आशंसमानः	— उन आपकी स्तुति करने की इच्छा करते हुये
सिद्धारम्भः	— आपकी स्तुति कर लूंगा
श्लाघनीयो भवेयम्	— और संसार में प्रशंसा का पात्र बन सकूंगा,
तव चरणयोः सेवापेक्षा	— आपके चरणों की सेवा करने की आकांक्षा

कस्य श्रेयसे न स्यात्	— किस के लिये कल्याणकारी नहीं होती।

जो व्यक्ति आपकी स्तुति करते हैं आप उन्हें तुरन्त प्रशंसा का पात्र बना देती हैं। अनन्य गति वाला मैं आपकी स्तुति करने की इच्छा करते हुये आपकी कृपा से आपकी स्तुति कर लूंगा और संसार में प्रशंसा पात्र बन सकूंगा। आपके चरणों की सेवा करने की आकांक्षा किसके लिये कल्याणकारी नहीं होती ?

(४)

यत्सङ्कल्पाद्भवति कमले यत्र देहिन्यमीषां
जन्मस्थेमप्रलयरचना जङ्गमाजङ्गमानाम् ।
तत् कल्याणं किमपि यमिनामेकलक्ष्यं समाधौ
पूर्णं तेजः स्फुरति भवतीपादलाक्षारसाङ्कम् ॥

कमले	— हे कमले !
भवती पादलाक्षारसाङ्कम्	— आपके चरणों में लगे लाक्षा रस से चिन्हित हुआ
तत् किम् अपि कल्याणं	— वह लोकोत्तर कल्याणमय
पूर्णं तेजः	— परिपूर्ण तेज
स्फुरति	— प्रकाशमान है ,
यत्सङ्कल्पात्	— जिस के सङ्कल्प से
यत्र देहिनि	— जिस शरीरी में

अमीषाम् जङ्गमाजङ्गमानाम् — इन चराचर पदार्थों की
जन्मस्थेमप्रलयरचना भवति — सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है (और)
यच्च यमिनां समाधौ एकलक्ष्यम् — जो समाधि की दशा में योगि जनों का एक लक्ष्य है

हे कमले ! वह लोकोत्तर कल्याणमय परिपूर्ण तेज (ब्रह्म) आपके चरणों में लगे हुये लाक्षारस (महावर) से चिन्हित हुआ प्रकाशमान है, जिसके अपने संकल्प से स्वयं उस शरीरी में इन चराचर पदार्थों की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है तथा जो समाधि की दशा में योगिजनों का एक लक्ष्य है।

(५)

निष्प्रत्यूहप्रणयघटितं देवि नित्यानपायं
विष्णुस्त्वं चेत्यनवधिगुणं द्वन्द्वमन्योन्यलक्ष्यम् ।
शेषश्चित्तं विमलमनसां मौलयश्च श्रुतीनां
संपद्यन्ते विहरणविधौ यस्य शय्याविशेषाः ॥

देवि ! — हे देवि !
विष्णुः त्वम् च इति — विष्णु और तुम्हारा द्वन्द्व
निष्प्रत्यूहप्रणयघटितम् — निष्कारण प्रेम मूलक,
नित्यानपायम् — सदा एक रहने वाला, अतएव कभी न टूटने वाला

अन्योन्यलक्ष्यम्	— परस्पर सम्बद्ध है,
अनवधिगुणद्वन्द्वम्	— तथा अनन्त गुणों से युक्त है,
यस्य	— इस द्वन्द्व (जोड़े) के
विहरणविधौ	— विहार काल में
शेषः	— अनन्त शेष,
विमल मनसाम् चित्तम्	— साधु पुरुषों का मन,
श्रुतीनाम् मौलयः च	— और वेदान्त की श्रुतियाँ
शय्याविशेषाः सम्पद्यन्ते	— शय्याओं का स्थान ग्रहण करती हैं।

हे देवि ! विष्णु और तुम्हारा द्वन्द्व (जोड़ा) निष्कारण प्रेम मूलक है, कभी न टूटने वाला है, परस्पर सम्बद्ध है और अनन्त गुणों से युक्त है। आप दोनों के विहार काल में अनन्त शेष, साधु पुरुषों के मन तथा वेदान्त की श्रुतियाँ शय्याओं का स्थान ग्रहण करती हैं।

(६)

उद्देश्यस्त्वं जननि भजतोरुज्झितोपाधिगन्धं
प्रत्यग्रूपे हविषि युवयोरेकशेषित्वयोगात् ।
पद्मे पत्युस्तव च निगमैर्नित्यमन्विष्यमाणो
नावच्छेदं भजति महिमा नर्तयन् मानसं नः ॥

जननि पद्मे	— हे माँ कमले !
युवयोः एकशेषित्वयोगात्	— आप दोनों के एकशेषी होने से आप दोनों का द्वन्द्व
प्रत्ययूपे हविषि	— जीवात्मा रूप हवि का समर्पण किये जाने पर (आत्म समर्पण यज्ञ में)
उज्झितोपाधिगन्धम्	— उपाधि रहित
उद्देश्यत्वम् भजतोः	— (हवि त्याग के) उद्देश्य होने वाले
युवयोः तव पत्युः च	— तुम दोनों पति पत्नी की
निगमैः नित्यम् अन्विष्यमाणः	— वेदों के द्वारा नित्य ही अनुसन्धीयमान
महिमा	— महिमा
नः मानसं नर्तयन्	— हमारे मन को आनन्दित करती हुई
अवच्छेदम् न भजति	— सीमित नहीं है।

हे माँ कमले ! आत्म समर्पण यज्ञ में आप दोनों के एक शेषी होने से आप दोनों का द्वन्द्व जीवात्मा रूप हवि के समर्पण किये जाने पर उपाधि रहित उद्देश्य होता है। वेदों के द्वारा नित्य अनुसन्धान की जाने वाली आप दोनों की महिमा निरसीम है और हमारे मन को नचा रही है अर्थात आनन्दित कर रही है।

(७)

पश्यन्तीषु श्रुतिषु परितः सूरिबृन्देन सार्धं
मध्येकृत्य त्रिगुणफलकं निर्मितस्थानभेदम् ।
विश्वाधीशप्रणयिनि सदा विभ्रमद्यूतवृत्तौ
ब्रह्मेशाद्या दधति युवयोरक्षशारप्रचारम् ॥

विश्वाधीश प्रणयिनि	— विश्वपति विष्णु की प्रेयसि !
युवयोः	— आप दोनों की
सदा विभ्रमद्यूतवृत्तौ	— हमेशा चलने वाली द्यूत क्रीडा में
सूरिबृन्देनसार्धम्	— जिसे नित्यसूरियों के साथ
श्रुतिषु परितः पश्यन्तीषु	— श्रुतियां चारों ओर से देख रही हैं
त्रिगुणफलकं मध्येकृत्य	— त्रिगुणात्मिका प्रकृति का क्रीडा-पट्ट बीच में रक्खा हुआ है,
निर्मितस्थानभेदम्	— विभिन्न लोक जिस पट्ट पर बने हुए अलग अलग स्थान (कोष्ठक) हैं,
ब्रह्मेशाद्याः	— ब्रह्मा शिव आदि
अक्षशार प्रचारम् दधति	अक्षशार का रूप ग्रहण करते हैं।

हे विश्वपति विष्णु की प्रेयसि ! आप दोनों की हमेशा चलने वाली द्यूतक्रीडा को नित्यसूरिजनों के साथ श्रुतियां चारों

ओर से देख रही हैं। त्रिगुणात्मिका प्रकृति इस द्यूतक्रीडा का क्रीडापट्ट (चौपड़) है जो आप दोनों के बीच में रक्खा हुआ है। ब्रह्मा आदि देवताओं के अलग अलग लोक ही इस पट्ट पर बने हुए स्थान (कोष्ठक) हैं। और ब्रह्मा शिव आदि देवता गण इस क्रीडा को अक्षशार (पांसे) हैं।

(८)

अस्येशाना त्वमसि जगतः संश्रयन्ती मुकुन्दं
लक्ष्मीः पद्मा जलधितनया विष्णुपत्नीन्दिरेति ।
यन्नामानि श्रुतिपरिपणान्येवमावर्तयन्तो
नावर्तन्ते दुरितपवनप्रेरिते जन्मचक्रे ॥

मुकुन्दम् संश्रयन्ती	— भगवान् मुकुन्द (विष्णु) का आश्रय लिये हुये
त्वम् अस्य जगतः ईशाना असि	— तुम इस जगत की ईश्वरी हो,
लक्ष्मीः पद्मा जलधितनया विष्णु-पत्नी इन्दिरा इति	— लक्ष्मी, पद्मा जलधितनया, विष्णु पत्नी और इन्दिरा,
यन्नामानि श्रुतिपरिपणानि	— ये आप के नाम वेदों में प्रसिद्ध हैं।
एवं आवर्तयन्तः	— इनका नामों का जप करने वाले
दुरितपवनप्रेरिते	— पापों की हवा से चलने वाले

जन्मचक्रे — जन्म चक्र के चक्कर में

न आवर्तन्ते — नहीं घूमा करते ।

भगवान् विष्णु के आश्रित तुम इस जगत की ईश्वरी हो। लक्ष्मी, पद्मा जलधितनया, विष्णु पत्नी, इन्दिरा, तुम्हारे नाम हैं। ये नाम वेदों में प्रसिद्ध हैं । जो इन नामों का जप करते हैं वे पापों की हवा से चलने वाले जन्म चक्र के चक्कर में फंसकर नहीं घूमा करते ।

(६)

त्वामेवाहुः कतिचिदपरे त्वत्प्रियं लोकनाथं
किं तैरन्तःकलहमलिनैः किंचिदुत्तीर्य मग्नैः ।
त्वत्संप्रीत्यै विहरति हरौ संमुखीनां श्रुतीनां
भावारूढौ भगवति युवां दम्पती दैवतं नः ॥

भगवति ! — हे भगवति !
(कुछ लोग)

त्वत्सम्प्रीत्यै हरौ विहरति — तुम्हारी प्रसन्नता के लिये ही हरि लीला करते हैं,
(इसलिये)

त्वाम् एव आहुः — तुमको ही जगत की ईश्वरी बताते हैं,

कतिचित् अपरे — कुछ अन्य लोग

त्वत्प्रियं लोकनाथम्	— तुम्हारे प्रियतम भगवान को जगत्पति बताते हैं,
तैः अन्तः कलहमलिनैः किम्	— आन्तरिक कलह से मलीन ऐसे लोगों से क्या लाभ,
किंचित् उत्तीर्य मग्नैः	— कारण कि ऐसे लोग थोड़ा तैरने के बाद भी अज्ञान के समुद्र डूब जाते हैं।
संमुखीनाम् श्रुतीनाम् भावारूढौ	— भगवत् प्रतिपादक श्रुतिओं के लक्ष्यभूत
युवां दम्पती नः दैवतम्	— हमारे तो आप दोनों ही देवता हैं।

हे भगवति ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिये हरि लीला करते हैं इसलिये कुछ लोग तुमको जगत की ईश्वरी बताते हैं कुछ अन्य लोग तुम्हारे पति भगवान को जगत्पति बताते हैं। आन्तरिक कलह में फंसे रहने वाले ऐसे लोगों से क्या लाभ, कारण कि ऐसे लोग थोड़ा तैरने के बाद अज्ञान के समुद्र में डूब जाते हैं। भगवत्प्रतिपादक श्रुतियों के लक्ष्यभूत आप दोनों हमारे देवता हैं।

---

(१०)

आपन्नार्तिप्रशमनविधौ बद्धदीक्षस्य विष्णोः

आचख्युस्त्वां प्रियसहचरीमैकमत्योपपन्नाम् ।

प्रादुर्भावैरपि समतनुः प्राध्वमन्वीयसे त्वं
दूरोत्क्षिप्तैरिव मधुरता दुग्धराशेस्तरङ्गैः ॥

आपन्नार्तिप्रशमनविधौ	— शरणागत के दुःख निवारण में
बद्धदीक्षस्य विष्णोः	— दीक्षित विष्णु भगवान् से
ऐकमत्योमत्योपपन्नाम्	— एक मत रखने वाली
त्वाम् प्रियसहचरीम् आचख्युः	— तुम्हें प्रिय सहचरी बताते हैं
प्रादुर्भावैः अपि समतनुः त्वम्	— अवतारों से भी तुम्हारे अनुरूप के रहते हुये
प्राध्वम् अन्वीयसे	— भगवान् तुम्हारे साथ उसी प्रकार बने रहते हैं
दूरोत्क्षिप्तैः दुग्धराशेस्तरंगैः मधुरता इव	— जिस प्रकार कि क्षीर समुद्र की लहरें दूर जाकर भी अपनी मधुरता को नहीं छोड़तीं ।

शरणागत के दुःख को दूर करने में दीक्षित विष्णु भगवान् से एक मत रहने वाली तुम्हें लोग उनकी सहचरी बताते हैं। अवतारों में भी तुम्हारे अनुरूप रहते हुये भगवान् तुम्हारे साथ उसी प्रकार बने रहते हैं जिस प्रकार कि क्षीर समुद्र की लहरें दूर जाकर भी अपनी मधुरता को नहीं छोड़तीं ।

(११)

धत्ते शोभां हरिमरकते तावकी मूर्तिराद्या
तन्वी तुङ्गस्तनभरनता तप्तजाम्बूनदाभा ।
यस्यां गच्छन्त्युदयविलयैर्नित्यमानन्दसिन्धौ
इच्छावेगोल्लसितलहरीविभ्रमं व्यक्तयस्ते ॥

तुङ्गस्तनभरनता तप्तजाम्बूनदाभा — पर्याप्त स्तन भार से किञ्चित आनत, उत्तप्त स्वर्ण के सदृश कान्ति मती

तावकी तन्वी — तुम्हारी हलकी सी

आद्या मूर्तिः — प्रथम मूर्ति

हरिमरकते शोभाम् धत्ते — मरकत मणि सदृश भगवान् विष्णु को भी शोभायमान करती है।

यस्याम् — आप के मूर्ति रूप

आनन्द सिन्धौ — आनन्द समुद्र में

ते व्यक्तयः — आपके सारे अवतार रूप

नित्यम् उदयविलयैः — उत्पन्न और लय होकर

इच्छावेगोल्लसितलहरीविभ्रमम् — इच्छा रूपी वेग की लहरों का रूप धारण करते हैं।

पर्याप्त स्तनभार से थोड़ा आनत, तपे हुये स्वर्ण के समान कान्तिमती तुम्हारी हलकी सी प्रथम मूर्ति मरकत मणि सदृश

भगवान् को शोभायमान करती है। आपके मूर्ति रूप आनन्द समुद्र में आपके सारे अवतार रूप उत्पन्न और लय होकर इच्छा रूपी वेग की लहरों का रूप धारण करते हैं।

(१२)

आसंसारं विततमखिलं वाङ्मयं यद्विभूतिः
यद्भ्रूभङ्गात कुसुमधनुषः किंकरो मेरुधन्वा ।
यस्यां नित्यं नयनशतकैरेकलक्ष्यो महेन्द्रः
पद्मे तासां परिणतिरसौ भावलेशैस्त्वदीयैः ॥

पद्मे ! — हे कमले !
आसंसारम् विततम् अखिलम् — जिन सरस्वती की यह
वाङ्मयम् यद्विभूतिः — वाङ्मयी विभूति सारे संसार में फैली हुई है,
यद्भ्रूभङ्गात् — जिन पार्वती के भ्रुकुटि विक्षेप से
मेरुधन्वा — मेरु को धनुष बनाने वाले
कुसुमधनुषः किंकरः — शंकर कामदेव के सेवक बन गये,
नयनशतकैः महेन्द्रः यस्याम् नित्यं एक लक्ष्यः — सहस्रों नेत्रों से इन्द्र जिन इन्द्राणी को निरन्तर देखा करते हैं,
असौ तासां परिणतिः — उन सरस्वती आदि की इस

प्रकार की महामहिम स्थिति

त्वदीयैः भावलेशैः — आप की ही थोड़ी सी विभूति का ही तो फल है अर्थात इन सबका इतना महत्व आप की ही कृपा से है।

हे कमले ! जिन सरस्वती की यह वाङ्मयी विभूति सारे संसार में विस्तृत है, जिन पार्वती के भ्रुकुटि विक्षेप से मेरु का धनुष धारण करने वाले शंकर कामदेव के किंकर बन गये तथा निरन्तर इन्द्र अपने सहस्रों नेत्रों से जिन इन्द्राणी को देखा करते हैं उन सरस्वती आदि की इस प्रकार की महामहिम स्थिति आपकी ही थोड़ी सी विभूति का फल है अर्थात इन सब का इतना महत्व आपकी ही कृपा से है।

---

(१३)

अग्रे भर्तुः सरसिजमये भद्रपीठे निषण्णाम्
अम्भोराशेरधिगतसुधासंप्लवादुत्थितां त्वाम् ।
पुष्पासारस्थगितभुवनैः पुष्कलावर्तकाद्यैः
क्लृप्तारम्भाः कनककलशैरभ्यषिञ्चन् गजेन्द्राः ॥

अधिगतसुधासंप्लवात् अम्भोराशेः — अमृत से युक्त क्षीरसमुद्र से
उत्थिताम् — प्रकट होकर
भर्तुः अग्रे — पतिदेव के सामने

सरसिजमये भद्रपीठे निषण्णाम्	— कमल के सिंहासन पर विराजमान
त्वाम्	— तुम्हें
क्लृप्तारम्भाः गजेन्द्राः	— अभिषेक करनेवाले गजेन्द्रों ने
पुष्पासारस्थगितभुवनैः पुष्कलावर्तकाद्यैः	— पुष्पों की वर्षा करने वाले पुष्कलावर्तक आदि मेघों के द्वारा लाये गये जल से
कनककलशैः	— स्वर्ण कलशों द्वारा
अभ्यषिञ्चन्	— अभिषेक कराया

अमृत से युक्त क्षीरसमुद्र से प्रकट होकर पतिदेव के सामने कमल के सिंहासन पर विराजमान तुम्हें अभिषेक कराने वाले गजेन्द्रों ने पुष्पों की वर्षा करने वाले पुष्कलावर्तक आदि मेघों के द्वारा लाये गये जल से स्वर्ण कलशों द्वारा अभिषेक कराया।

(१४)

आलोक्य त्वाममृतसहजे विष्णुवक्षःस्थलस्थां
शापाक्रान्ताः शरणमगमन् सावरोधाः सुरेन्द्राः ।
लब्ध्वा भूयस्त्रिभुवनमिदं लक्षितं त्वत्कटाक्षैः
सर्वाकारस्थिरसमुदयां संपदं निर्विशन्ति ॥

अमृत सहजे !	— हे अमृत के साथ उत्पन्न होने वाली !

शापाक्रान्ताः सावरोधाः सुरेन्द्राः	— महर्षि दुर्वासा के शाप से आक्रान्त देवेन्द्रों ने अपनी देवियों समेत
त्वाम् विष्णुवक्षः स्थलस्थां	— तुम्हें विष्णु के हृदय में विराजमान
आलोक्य	— देखकर
शरणम् अगमन्	— तुम्हारी शरण ली,
त्वत्कटाक्षैः लक्षितम्	— और तुम्हारे कृपा कटाक्ष से युक्त
इदम् त्रिभुवनम्	— इस त्रिभुवन को
भूयः लब्ध्वा	— पुनः प्राप्त कर
सर्वाकारस्थिरसमुदयां संपदं	— सर्वतः समृद्धिशील सम्पत्ति को
निर्विशन्ति	— प्राप्त करते हैं।

हे अमृत के साथ उत्पन्न होने वाली ! महर्षि दुर्वासा के शाप से आक्रान्त देवेन्द्रों ने अपनी देवियों समेत तुम्हें विष्णु के हृदय में विराजमान देखकर तुम्हारी शरण ली और वे तुम्हारे कृपा कटाक्ष से युक्त इस त्रिभुवन को पुनः प्राप्त कर सर्वतः समृद्धि शील सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं।

---

(१५)

आर्तत्राणव्रतिभिरमृतासारनीलाम्बुवाहैः

अम्भोजानामुषसि मिषतामन्तरङ्गैरपाङ्गैः ।

यस्यां यस्यां दिशि विहरते देवि दृष्टिस्त्वदीया
तस्यां तस्यामहमहमिकां तन्वते संपदोघाः ॥

देवि !	— हे देवि !
त्वदीया दृष्टिः	— तुम्हारी दृष्टि
आर्तत्राणव्रतिभिः	— आर्तजनों की रक्षा का व्रत पालन करने वाले
अमृतासारनीलाम्बुवाहैः	— अमृत की वर्षा करने वाले नील मेघों के समान तथा
उषसि मिषताम् अम्भोजानाम् अन्तरंगैः	— उषःकाल में खिलते हुए कमल के समान
अपांगैः	— नेत्रों से
यस्याम् यस्याम् दिशि विहरते	— जिस जिस की ओर प्रीति पूर्वक पड़ती है
तस्याम् तस्याम्	— उस उस ओर
सम्पदोघाः	— सम्पतियाँ
अहमहमिकाम् तन्वते	— पूर्व प्राप्ति के लिये होड़ किया करतीं हैं।

हे देवि ! आर्तजनों की रक्षा करने का व्रत पालन करने वाले नेत्रों से जो अमृत की वर्षा करने वाले नील मेघों के समान हैं तथा उषःकाल में खिलते हुए कमल के समान है, निकली हुई तुम्हारी दृष्टि जिस जिस की ओर प्रीतिपूर्वक पड़ती है उस उस

और सम्पत्तियां पूर्वप्राप्ति के लिये होड़ किया करती हैं।

---

(१६)

योगारम्भत्वरितमनसो युष्मदैकान्त्ययुक्तं
धर्मं प्राप्तुं प्रथममिह ये धारयन्ते धनायाम् ।
तेषां भूमेर्धनपतिगृहादम्बरादम्बुधेर्वा
धारा निर्यान्त्यधिकमधिकं वाञ्छितानां वसूनाम् ॥

योगारम्भत्वरितमनसः	— योग को शीघ्र आरम्भ करने की रुचि रखने वाले
ये इह	— जो लोग यहां
युष्मदैकान्त्ययुक्तम्	— तुम्हारी अनन्य उपासना से युक्त
प्रथमम् धर्मम् प्राप्तुम्	— प्रथम धर्म को प्राप्त करने में
धनायाम् धारयन्ते	— धन की इच्छा करते हैं
तेषां	— उनके लिये
भूमेः	— भूमि से,
धनपतिगृहात्	— कुबेर के घर से,
अम्बरात्	— आकाश से
अम्बुधेः वा	— अथवा समुद्र से
वाञ्छितानाम् वसूनाम्	— अभिलषित धन की
अधिकमधिकम्	— अधिक से अधिक

धाराः निर्यान्ति — धारायें प्रवाहित होती हैं।

योग को शीघ्र आरम्भ करने की रुचि रखने वाले जो लोग यहां तुम्हारी अनन्य उपासना से युक्त प्रथम धर्म को प्राप्त करने में धन की इच्छा करते हैं, उनके लिये भूमि से, कुबेर के घर से, आकाश से अथवा समुद्र से अभिलषित धन की अधिक से अधिक धारायें प्रवाहित होती हैं।

(१७)

श्रेयस्कामाः कमलनिलये चित्रमाम्नायवाचां
चूडापीडं तव पदयुगं चेतसा धारयन्तः।
छत्रच्छायासुभगशिरसश्चामरस्मेरपार्श्वाः
श्लाघाशब्दश्रवणमुदिताः स्रग्विणः सञ्चरन्ति ॥

कमलनिलये ! — हे कमल वासिनि !

श्रेयस्कामाः — (जो) श्रेय की कामना करने वाले

आम्नायवाचां चित्रं चूडापीडं — श्रुतियों के विचित्र चूड़ामणि के समान शोभायमान

तव पदयुगम् — तुम्हारे चरण कमलों को

चेतसा धारयन्तः — मन में धारण करते हैं

छत्रच्छायासुभगशिरसः — उनके सुन्दर मस्तकों पर छत्र की छाया होती है और

चामरस्मेरपार्श्वाः — उनके अगल बगल चंवर डुलाये जाते हैं

श्लाघा शब्द श्रवण मुदिताः — वे प्रशंसा वाचक शब्दों को सुनकर प्रसन्न होते है

स्रग्विणः — वे माला धारण करते हैं

सञ्चरन्ति — (और इस प्रकार संसार में आनन्दपूर्वक) विचरा करते हैं

हे कमल वासिनी! श्रेय की कामना करने वाले जो लोग श्रुतियों के विचित्र चूड़ामणि के समान शोभायमान तुम्हारे चरण कमलों को मन में धारण करते हैं उनके सुन्दर मस्तकों पर छत्र की छाया होती है और उनके अगल बगल चंवर डुलाये जाते हैं। वे प्रशंसा वाचक शब्दों को सुनकर प्रसन्न होते हैं। उनके गले में मालायें धारण कराई जाती हैं और इस प्रकार वे संसार में आनन्द पूर्वक विचरा करते हैं।

(१८)

ऊरीकर्तुं कुशलमखिलं जेतुमादीनरातीन्
दूरीकर्तुं दुरितनिवहं त्यक्तुमाद्यामविद्याम् ।
अम्ब स्तम्बावधिकजननग्रामसीमान्तरेखाम्
आलम्बन्ते विमलमनसो विष्णुकान्ते दयां ते ॥

अम्ब विष्णु कान्ते ! — हे मां लक्ष्मि !

विमल मनसः — जिनका मन निर्मल हैं, ऐसे लोग

अखिलम् कुशलम् ऊरीकर्तुम् — परिपूर्ण कल्याण पाने के लिये,

आदीनरातीन् जेतुम् — सबसे बड़े शत्रुओं को जीतने के लिये,

दुरित निवहान् दूरीकर्तुम् — पापों को दूर करने के लिये

आद्याम् अविद्याम् त्युक्तुम् — और अनादि अविद्या को छोड़ने के लिये

स्तम्बावधिकजननग्रामसीमान्तरेखाम् — स्तम्ब पर्यन्त लेजाने वाले जन्म चक्र को समाप्त करने वाली

दयां — आपकी दया का

आलम्बन्ते — सहारा लेते हैं

हे माँ लक्ष्मी ! जिनका मन निर्मल है ऐसे लोग परिपूर्ण कल्याण पाने के लिये, सबसे बड़े शत्रुओं को जीतने के लिये, पापों को दूर करने के लिये और अनादि अविद्या को छोड़ने के लिये आपकी उस दया का सहारा लेते हैं जो स्तम्ब पर्यन्त ले जाने वाले जन्म चक्र को समाप्त कर देती है।

---

(१९)

जाताकाङ्क्षा जननि युवयोरेकसेवाधिकारे
मायालीढं विभवमखिलं मन्यमानास्तृणाय ।

प्रीत्यै विष्णोस्तव च कृतिनः प्रीतिमन्तो भजन्ते
वेलाभङ्गप्रशमनफलं वैदिकं धर्मसेतुम् ॥

जननि !	—हे माता !
युवयोः एक सेवाधिकारे	—केवल आप दोनों की सेवा की ही
जाताकाङ्क्षाः	—आकांक्षा करने वाले
कृतिनः	—भाग्य शाली लोग
मायालीढम् अखिलम् विभवम्	—माया जनित सम्पूर्ण वैभव को
तृणाय मन्यमानाः	—तिनके के समान समझकर
प्रीतिमन्तो	—और प्रसन्न चित्त होकर
विष्णोः तव च प्रीत्यै	—विष्णु और आपकी प्रसन्नता के लिये
वेलाभङ्गप्रशमनफलम्	—मर्यादा की रक्षा करने वाले
वैदिकम् धर्मसेतुम् भजन्ते	—वैदिक धर्मसेतु का सेवन करते हैं।

हे माता ! केवल आप दोनों की सेवा की ही आकांक्षा करने वाले भाग्यशाली लोग मायाजनित सम्पूर्ण वैभव को तिनके के समान समझकर और प्रसन्न चित्त होकर विष्णु और आपकी प्रसन्नता के लिये मर्यादा की रक्षा करने वाले वैदिक धर्मसेतु का सेवन करते हैं।

(२०)

सेवे देवि त्रिदशमहिलामौलिमालार्चितं ते
सिद्धिक्षेत्रं शमितविपदां संपदां पादपद्मम् ।
यस्मिन्नीषन्नमितशिरसो यापयित्वा शरीरं
वर्तिष्यन्ते वितमसि पदे वासुदेवस्य धन्याः ॥

देवि !	— हे देवि !
त्रिदशमहिलामौलिमालार्चितम्	— देवाङ्गनाओं की मस्तक मालाओं द्वारा सुपूजित
सिद्धिक्षेत्रम्	— सिद्धि के केन्द्र
शमितविपदाम् सम्पदाम्	— विपत्ति रहित सम्पत्ति का भण्डार
ते पादपद्मम्	— आपके चरण कमल का
सेवे	— सेवन करता हूँ
यस्मिन्	— जिस चरण कमल में
ईषन्नमितशिरसो	— थोड़ा सा भी मस्तक झुकाने वाले
शरीरं यापयित्वा	— शरीर का त्याग करने के पश्चात्
वासुदेवस्य वितमसि पदे	— वासुदेव के तमोगुण रहित परमपद में
धन्याः वर्तन्ते	— धन्य होकर रहते हैं ।

हे देवि ! मैं आपके उस चरण कमल का सेवन करता हूँ जो देवाङ्गनाओं की मस्तक मालाओं द्वारा सुपूजित है, सिद्धि का केन्द्र है, और विपत्ति रहित सम्पत्ति का भण्डार है। थोड़ा सा भी आपको मस्तक झुकाने वाले अपने शरीर का त्याग करने के पश्चात् वासुदेव के तमोगुण रहित परमपद को पाकर धन्य होते हैं।

(२१)

सानुप्रासप्रकटितदयैः सान्द्रवात्सल्यदिग्धैः
अम्ब स्निग्धैरमृतलहरीलब्धसब्रह्मचर्यैः ।
धर्मे तापत्रयविरचिते गाढतप्तं क्षणं माम्
आकिञ्चन्यग्लपितमनघैरार्द्रयेथाः कटाक्षैः ॥

अम्ब ! — हे माता !
तापत्रयविरचिते धर्मे — त्रितापों की अग्नि में अत्यधिक
गाढतप्तम् — तपते हुए
माम् आकिंचन्यग्लपितम् — मुझ अकिञ्चन को
क्षणम् — एक क्षण के लिये भी
सानुप्रास प्रकटितदयैः — जिन से आपकी रसवती दया प्रकट होती है।
सान्द्रवात्सल्यदिग्धैः — जिसमें वात्सल्य भरा पड़ा है,
स्निग्धैः — जो स्नेहमय हैं

अमृतलहरीलब्धसब्रह्मचर्यैः — तथा जिनका स्वभाव अमृत की लहरों के समान हैं।

अनर्घैः कटाक्षैः — अपने पवित्र कटाक्षों से

आर्द्रयेथाः — (शीतल) कर दो

हे माता ! त्रितापों की अग्नि से अत्यधिक तपते हुए मुझ अकिञ्चन को एक क्षण के लिये भी उन अपने पवित्र कटाक्षों से शीतल करदो, जिनसे आपकी रसवती दया प्रकट होती है। जिनमें वात्सल्य भरा पड़ा है, जो स्नेहमय हैं तथा जिनका स्वभाव अमृत की लहरों के समान है।

(२२)

संपद्यन्ते भवभयतमीभानवस्त्वत्प्रसादात
भावाः सर्वे भगवति हरौ भक्तिमुद्वेलयन्तः ।
याचे किं त्वामहमिह यतः शीतलोदारशीला
भूयो भूयो दिशसि महतां मङ्गलानां प्रबन्धान् ॥

त्वत्प्रसादात् — तुम्हारी कृपा से

भगवति हरौ — भगवान् श्रीहरि में

भक्तिम् उद्वेलयन्तः — भक्ति का बढ़ाने वाले तथा

भवभयतमीभानवः — भवभय के अन्धकार को सूर्य के समान मिटाने वाले

सर्वे भावाः — समस्त भाव

सम्पद्यन्ते	— स्फुरित होते हैं।
त्वाम्	— तुमसे
अहम्	— मैं
इह किम् याचे	— यहाँ क्या मांगू
यतः	— क्योंकि
शीतलोदारशीला	— शान्त उदारता से सम्पन्न (तुम)
महतां मङ्गलानां प्रबन्धान्	— महान् मङ्गलों को
भूयो भूयो दिशसि	— वारम्वार प्रदान करती रहती हो

तुम्हारी कृपा से भगवान् श्रीहरि में भक्ति को बढ़ाने वाले तथा भवभय के अन्धकार को सूर्य के समान मिटाने वाले समस्त स्फुरित होते हैं। तुम से मैं क्या माँगू क्यों कि शान्त उदारता से सम्पन्न तुम महान मङ्गलों को वारम्वार प्रदान करती रहती हो

(२३)

माता देवि त्वमसि भगवान् वासुदेवः पिता मे
जातः सोऽहं जननि युवयोरेकलक्ष्यं दयायाः।
दत्तो युष्मत्परिजनतया देशिकैरप्यतस्त्वं
किंतेभूयः प्रियमिति किल स्मेरवक्त्रा विभासि ॥

देवि	— हे देवि!
त्वम् माता असि	— तुम माता हो
भगवान् वासुदेवः मे पिता	— भगवान् वासुदेव मेरे पिता हैं

जननि	— हे माता !
सः अहम्	— ऐसा मैं
युवयोः दयायाः एक लक्ष्यम् जातः	— तुम दोनों की दया का एक लक्ष्य बन गया हूँ ।
देशिकैः अपि	— आचार्यों के द्वारा भी
युष्मत्परिजनतया	— तुम्हारे सेवक के रूप में
दत्तः	— समर्पित किया गया हूं
किं ते भूयः प्रियम् इति किल	— मैं और तेरा क्या उपकार करूँ ऐसा पूछती हुई
त्वं स्मेरवक्त्रा विभासि	— तुम मुस्कराती हुई शोभायमान हो रही हो ।

हे देवि ! तुम माता हो, और भगवान् वासुदेव मेरे पिता हैं । हे माता ! ऐसा मैं तुम दोनों की दया का एक लक्ष्य बन गया हूँ । आचार्यों के द्वारा भी तुम्हारे सेवक के रूप में समर्पित किया गया हूँ । मैं और तेरा क्या उपकार करूँ, ऐसा पूंछती हुई तुम मुस्कराती हुई शोभायमान हो रही हो ।

(२४)

कल्याणानामविकलनिधिः काऽपि कारुण्यसीमा

नित्यामोदा निगमवचसां मौलिमन्दारमाला ।

संपद् दिव्या मधुविजयिनः सन्निधत्तां सदा मे
सैषा देवी सकलभुवनप्रार्थनाकामधेनुः ॥

का अपि	— जो
कल्याणानाम् अविकलनिधिः	— कल्याण की परिपूर्ण निधि, हैं
कारुण्यसीमा	— करुणा की सीमा, हैं
नित्यामोदर	— नित्य आनन्द रूप, हैं
निगमवचसाम् मौलिमन्दारमाला	— श्रुतियों के मस्तक को अलंकृत करने वाली मन्दार पुष्पों की माला हैं
मधुविजयिनः दिव्या सम्पत्	— मधुविजेता विष्णु की दिव्य सम्पत्ति, हैं
सकलभुवन प्रार्थना कामधेनुः	— समस्त संसार की प्रार्थनाओं को स्वीकार करने वाली कामधेनु हैं
सा एषा देवी	— वह यह लक्ष्मी देवी
सदा मे सन्निधत्ताम्	— सदा मेरे हृदय में निवास करें।

जो कल्याण की परिपूर्ण निधि हैं करुणा की सीमा है नित्य आनन्द रूप हैं, श्रुतियों के मस्तक को अलंकृत करने वाली मन्दार पुष्पों की माला हैं, मधुविजेता विष्णु की दिव्य सम्पत्ति हैं तथा समस्त संसार की प्रार्थनाओं को स्वीकार करने वाली काम धेनु हैं,

वह यह लक्ष्मी देवी सदा मेरे हृदय में निवास करें।

(२५)

उपचित गुरुभक्तेरुत्थितं वेङ्कटेशात्
कलिकलुषनिवृत्त्यै कल्पमानं प्रजानाम्।
सरसिजनिलयायाः स्तोत्रमेतत् पठन्तः
सकलकुशलसीमासार्वभौमा भवन्ति॥

उपचित गुरुभक्तेः — गुरुभक्त
वेङ्कटेशात् — वेंकटनाथ देशिक द्वारा
उत्थितम् — विरचित (यहस्तोत्र)
प्रजानाम् कलिकलुषनिवृत्त्यै — जन-जन के कलिकलुष के
कल्पमानम् निवर्तक
सरसिज निलयायाः — कमलवासिनी लक्ष्मी के
एतत् स्तोत्रम् पठन्तः — इस स्तोत्र का पार करने वाले
सकलकुशल सीमासार्वभौमाः — सब प्रकार परिपूर्ण सुखी
भवन्ति — होते हैं।

गुरुभक्त आचार्य श्री वेंकटानाथ देशिक द्वारा रचित जन-जन के कलिकलुष के निवर्तक कमलवासिनी लक्ष्मी के इस स्तोत्र का पाठ करने वाले सब प्रकार से परिपूर्ण सुखी होते हैं।

कवितार्किकसिंहाय कल्याणगुणशालिने।
श्रीमते वेङ्कटेशाय वेदान्तगुरवे नमः॥
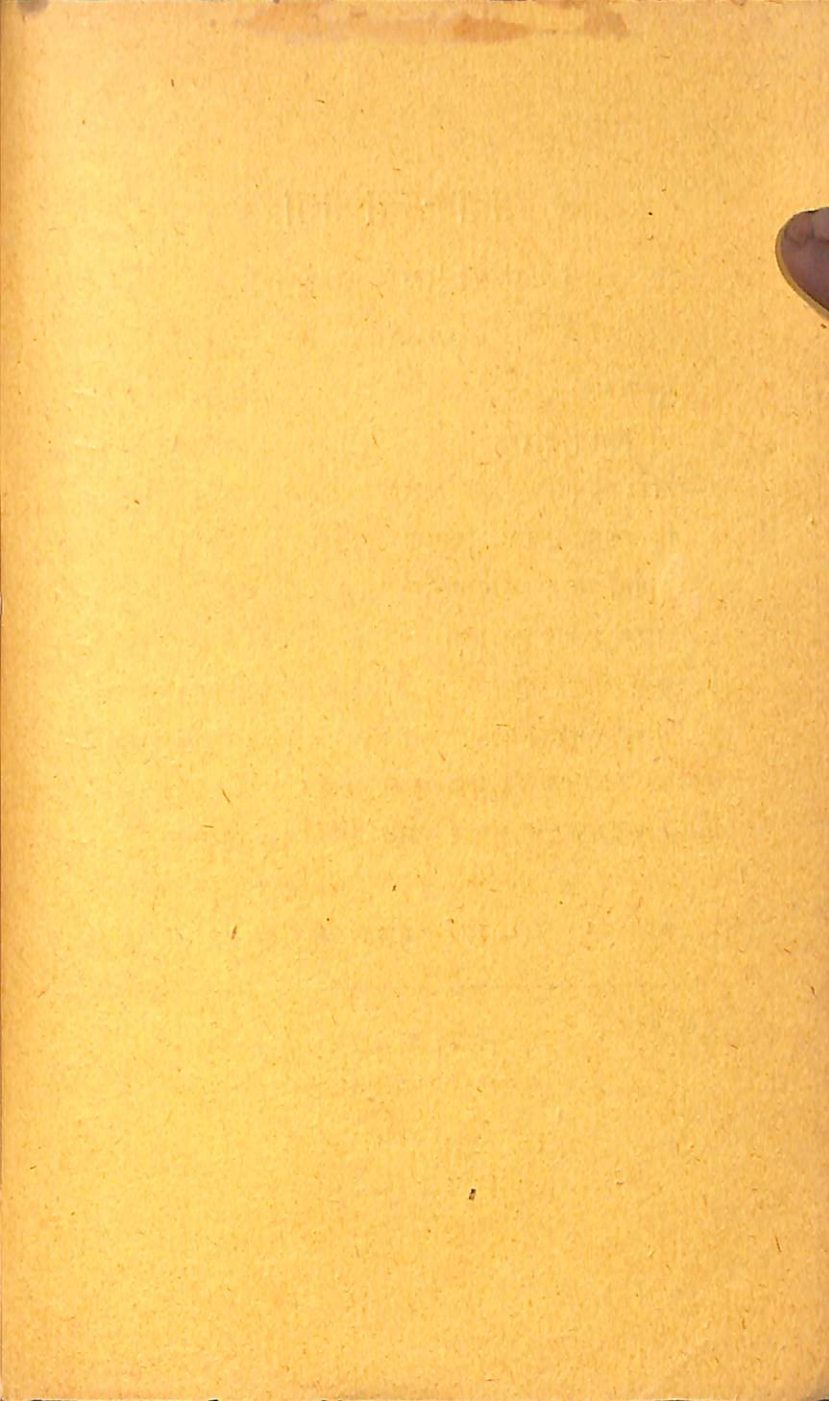
❀ आचार्य-ग्रन्थ-माला ❀

[प्रकाशित पुस्तकों की सूची]
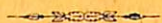
१—गुरुपरम्परा —) २—न्यासदशक —)
३—श्री वेदान्त देशिक ॥) ४—अर्थपञ्चक —)
५—तिरुप्पावै (हिन्दी छन्दोबद्ध) =)
६—हिन्दूकोडालोचन—(अपूर्ण)
७—गीतार्थ संग्रह व्याख्यासमेत ॥) ८—धर्म —)
९—श्रीरंग मन्दिर वृन्दावन —)
१०—चतुःश्लोकी सान्वयार्थ =) ११—श्रीरमावैकुण्ठ पुष्कर —)
१२—भारतीय दर्शन एक परिचय =) १३—विजयादशमी —)
१४—श्री वेदान्तदेशिक मङ्गलम् सान्वयार्थ —)
१५—मुकुन्दमाला अन्वयार्थ समेत ॥) १६—गोमाता —)
१७—सांख्यदर्शन १) १८—शिवतत्व विवेचन ।)
१९—होली ≡) २०—श्रीरंग मन्दिर वृन्दावन (परिवर्धित) =)

मंगाने का पता—

व्यवस्थापक, आचार्य ग्रन्थमाला

आचार्य पीठ, बरेली

(उत्तर प्रदेश)